International Journal of Sanskrit Research 2025; 11(5): 152-154

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2025; 11(5): 152-154
© 2025 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-08-2025
Accepted: 17-09-2025

Sonali Kumari
Research Student, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India

Corresponding Author:
Sonali Kumari
Research Student, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India

आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी प्रणीत शतक-संहिता का काव्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य

Sonali Kumari

सारांश
आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी प्रणीत शतकसंहिता तैतीस शतकों का एक आधुनिक शतक काव्य है जिसके अन्तर्गत भिन्न भिन्न विषयों को आधार बनाकर शतकों की रचना की गई है। शतकसंहिता में लालित्य पूर्ण पद्यों का समावेश है जिसमें प्रसाद और माधुर्य गुणों की व्याप्ति सर्वत्र दिखाई देती है। प्रस्तुत शोध पत्र में शतकसंहिता में वर्णित काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का वर्णन किया गया है जिनमें मुख्य रूप से छन्द, अलंकार एवं गुणों की चर्चा की गई है।

कूट शब्द : आर्या छन्द, उत्प्रेक्षा अलंकार, अनुप्रास अलंकार

प्रस्तावना
संस्कृत-साहित्य की काव्य परम्परा में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों जैसे – रस,छन्द,अलंकार आदि का निष्पादन काव्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। काव्य रूपी शरीर के निरूपण में सभी पूर्वाचार्यों ने इन तत्त्वों का विवेचन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने काव्य में किया है। परम्परानुसार कालक्रम से आधुनिक रचनाओं में भी काव्य को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है जिसके फलस्वरूप अनेक काव्यों का प्रणयन देखने को मिलता है। इसी क्रम में आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी जी का 'शतक-संहिता' काव्य भी परिगणित होता है। विविध विषयों को आधार बनाकर रचित यह ग्रन्थ आचार्य चतुर्वेदी जी की रचनात्मकता दृष्टिगोचर करती है। आचार्य चतुर्वेदी जी इस ग्रन्थ में तैंतीस शतकों की रचना किए हैं। यह ग्रन्थ अति सरल एवं सामान्य संस्कृत को जानने वाले लोगों के मन को भी आह्लादित करने वाला है।

शतक – संहिता में वर्णित काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन –
(क) छन्द: वैदिक तथा लौकिक वाङ्गमय में छन्दशास्त्र का एक विशिष्ट स्थान है। संस्कृत साहित्य में छन्दों की जो महत्ता है वह अन्यत्र किसी साहित्य में इस प्रकार से नहीं प्राप्त होती है।

छन्द शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ
आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में छन्द शब्द को 'छाद्यते, छन्द्यते वा अनेन इति छन्दः' ऐसा माना है। महर्षि पाणिनि के अनुसार 'छन्दयति = आह्लादयति इति छन्दः'।

भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में छन्द की परिभाषा इस प्रकार से वर्णित है –

एवं नानार्थसंयुक्तैः पदैर्वर्णविभूषितैः।
चतुर्भिरस्तु भवेर्मुक्तं छन्दोवृद्धाभिधानवत्।।[1]

अर्थात् – विभिन्न अर्थों से युक्त चारों पदों और वर्णों से विभूषित वृत्त छन्द है।
संस्कृत-वाङ्मय का मूल आधार छंदों में ही सुरक्षित है जिसकी प्रामाणिकता वैदिक सूक्त भी करते हैं।
छंदों के उद्भव को बताते हुए ऋग्वेद में कहा गया है – छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।
वैदिक मन्त्रों के अर्थबोध, उनका सही उच्चारण एवं वैदिक मन्त्रों के समुचित याज्ञिक प्रयोग हेतु षड् वेदांगों की रचना की गई। ये वेदाङ्ग सामान्यतया सूत्रशैली में लिखे गए हैं –

शिक्षा व्याकरण छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा
कलपश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

ऋग्वैदिक शिक्षा ग्रन्थ पाणिनीय शिक्षा में षड्-वेदांगों का वेद पुरुष के छह अङ्गों के रूप में वर्णन है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। 2

अर्थात् छन्दः शास्त्र को वेद पुरुष का पाद, कल्पशास्त्र को हाथ, ज्योतिष शास्त्र को चक्षु, निरुक्तशास्त्र को श्रोत्र,शिक्षाशास्त्र को घ्राण और व्याकरणशास्त्र को मुख कहा गया है।

छन्द काव्य या पद्यों को गति प्रदान करता है अतः इसे वेद का पाद कहा गया है। छंदों का विधान पूर्णरूप से मात्रा पर ही निर्भर रहता है। मात्रायें वर्ण के उच्चारण में लगनेवाले समय को निर्धारित करती है।

छन्दों का विभाजन –

छन्दों को दो भागों में विभाजित किया गया है –

१. वैदिक छन्द, २. लौकिक छन्द

लौकिक छन्दों को भी पुनः दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

१. मात्रिक छन्द, २. वार्णिक छन्द

- **मात्रिक छन्द** – इस छन्द को मात्रा वृत्त या जाति कहा जाता है। इसके प्रत्येक चरण की माप मात्राओं को गिनकर की जाती है।
- **वार्णिक छन्द** – इस छन्द को प्रत्येक पद के वर्णों की संख्या के आधार पर मापा जाता है।

यह तीन प्रकार का होता है – १. समवृत्त २. अर्धसमवृत्त ३. विषमवृत्त

शतकसंहिता में छन्द परिचय

आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने अपने काव्य शतक – संहिता में केवल 'आर्या' छन्द का ही प्रयोग किया है। आचार्य चतुर्वेदी जी ने अपने सभी काव्यों में प्रायः आर्या छन्द का ही प्रयोग किया है।

प्राचीनकाल में 'गाथा सप्तशती', 'आर्या सप्तशती' आदि ग्रन्थों में आर्या छन्द में निबद्ध रचनायें देखने को मिलती है। मात्रिक छन्दों में आर्या छन्द का स्थान सर्वोपरि है।

आर्या का सरलतम लक्षण है –

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदशा सार्या।। 3

जिसके प्रथम एवं तृतीय पाद में बारह मात्रायें, द्वितीय पाद में अठारह मात्रायें एवं चतुर्थ पाद में पन्द्रह मात्रायें हों, वह आर्या कहलाएगी। शतकसंहिता का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

सर्वेषु देशकालेषु पुराणानां प्रकल्पनम्।
ऽ।।ऽ।ऽऽ।।ऽऽऽ।ऽ।।
संजातं जायते चापि नैरन्तर्येण नित्यशः।।4
ऽऽऽऽ।।ऽ।ऽऽऽ।।ऽ।ऽ

(ख) अलंकार

अलंकार शब्द अलम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिसका सामान्य अर्थ है – आभूषण अथवा अलंकरण। अलंकार शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ प्रचलित है –

- 'अलङ्करोति – इत्यलङ्कारः'-अर्थात् जो सुशोभित करे वह अलंकार है।
- 'अलङ्क्रियतेऽनेनेत्यलङ्कारः' – अर्थात् जिससे अलंकृत अथवा सुशोभित किया जाय, वह अलंकार है।
- 'अलङ्कृतिः अलङ्कारः' – अर्थात् जो भूषण रूप हो वही अलंकार है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अलंकार को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है – कविताकामिनी को सुसज्जित करने वाले अनुप्रास–उपमादि उपकरणों को अलंकार कहा जाता है। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष अपने सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए अलंकरणों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार शब्दार्थमय काव्य को अलंकृत करने वाले तत्त्वों में अलंकार का प्रमुख स्थान है। काव्यशास्त्र में अलंकार विमर्श भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है जिसे परवर्ती आचार्यों के द्वारा काव्यशास्त्र के एक विशेष संप्रदाय – अलंकार संप्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित किया गया जिसके प्रतिष्ठापक आचार्य भामह कहे जाते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में चार अलंकारों का वर्णन मिलता है – उपमा,रूपक,दीपक,यमक। परवर्ती आचार्यों ने अलंकार संप्रदाय को समृद्ध करने का कार्य किया। श्रङ्गारप्रकाशकार भोजराज ने अलङ्कारों की संख्या ७२ मानी है जिसे वो तीन श्रेणी में विभाजित करते हैं-(१) अलङ्कार की प्रथम श्रेणी में भोजराज ने शब्दालङ्कार को माना जिसके अन्तर्गत २४ अलङ्कार रखे हैं (२) द्वितीय श्रेणी अर्थालङ्कारों की है इसके अन्तर्गत भी उन्होंने २४ अलङ्कार माने हैं और अंतिम (३) तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत उन्होंने उभयालंकार को रखा है और इसके अंतर्गत भी २४ अलङ्कारों को उन्होंने रखा है। कविता / काव्य में अलङ्कारों की महत्ता और उसके स्थान निर्धारण को लेकर आचार्यों में सैद्धांतिक मतभेद देखने को मिलते हैं। ध्वनिवादी आचार्य अलंकार को काव्य के बाह्य तत्त्व के रूप में निरूपित करते हैं। ध्वनि सिद्धांत के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्धन प्रदत्त अलंकार का लक्षण

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत्।।5

ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य मम्मट काव्य में अलंकारों की स्थिति एवं उपस्थिति के विषय में आचार्य आनन्दवर्धन के मत का ही समर्थन करते हैं। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट प्रदत्त अलङ्कार का लक्षण –

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।। 6

आचार्य मम्मट भी ध्वनिवादी आचार्यों की परम्परा से आते हैं। ध्वनिवादी आचार्य अलंकारों को काव्य के अङ्गभूत शब्द और अर्थ का धर्म मानते हैं।अर्थात् अलंकार शब्द तथा अर्थरूप अङ्गों के उत्कर्ष द्वारा काव्य में विद्यमान रस को उपकृत करते हैं ठीक उसी तरह जैसे कण्ठादि अङ्गों को अलंकृत करता हुआ हारादि अलंकरण शरीरी (आत्मा) को भी अलंकृत कचौदहवीं सदी के आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गादिवत्॥7

आचार्य विश्वनाथ अलङ्कारों के लक्षण निरूपण में ध्वनिवादी आचार्यों के मत की संपुष्टि करते हुए ही अलङ्कार का स्वरूप प्रस्तुत किए हैं।

प्राय

सभी आचार्यों ने अलङ्कार को काव्य में शब्द और अर्थ के उत्कर्षाधायक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार से अलङ्कार का आधार शब्द और अर्थ हैं। इसी आधार पर शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उन दोनों के मिश्रण से बने हुए उभयालङ्कार इन तीन प्रकार के अलङ्कारों की कल्पना की गई है। पं. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी जी ने शतक संहिता में सहज रूप से शब्दालङ्कारों और अर्थालंकारों

का प्रयोग किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि इन अलंकारों का प्रयोग प्रयोजनवश नहीं अपितु स्वतः ही ये अलंकार उनकी भाषा शैली में गुम्फित हो गये हैं । इसमें कवि ने एक ओर अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों के चित्र प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर उपमा,उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों का प्रयोग किये हैं ।

आचार्य मम्मट अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में अनुप्रास अलंकार का लक्षण इस प्रकार से देते हैं –

वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतो द्विधा ।
सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः एकस्याप्यसकृत्परः । ।8

अर्थात् स्वरों का भेद होने पर भी व्यंजन वर्णों की समानता अनुप्रास अलंकार कहलाता है । छेकगत और वृत्तिगत इस प्रकार से यह अनुप्रास अलंकार दो प्रकार का होता है । अनेक व्यंजन वर्णों का एक बार साम्य छेकानुप्रास कहलाता है और एक या अनेक व्यंजन वर्णों का अनेक बार साम्य वृत्त्यनुप्रास कहलाता है ।
आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी प्रणीत शतकसंहिता के अलंकार शतक में अनुप्रास के प्रभेद का सुंदर प्रयोग किया गया है । यथा –

पारस्परिकविरोधे लोके लोके विलोक्यते योऽयम् ।
कवितायाः संसारे सादरमेषोऽस्त्यलंकारः । ।9

प्रस्तुत श्लोक में लोके लोके शब्द की क्रमशः आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलंकार है । इसी प्रकार से वृत्त्यनुप्रास अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत हैं –

निन्दानिन्दितनन्दितसेवासञ्जातसंस्कारैः ।
आंदोलितमथ सर्वं कुतो न वाद्यापि रणरणकम् । ।10

प्रस्तुत श्लोक में न और द वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है । आचार्य चतुर्वेदी जी उत्प्रेक्षा अलंकार को सर्वशीर्षस्थ बताते हैं –

उत्प्रेक्षा अलंकारः कश्चिदयं सर्वशीर्षस्थः
यत्र मनोमयराज्ये द्वाराण्युद्घाटितानि स्युः । ।11

उत्प्रेक्षावल्लभ इत्युपाधिना कोऽपि संयुक्तः
कवितावनिताकांतः प्रसादभाषां प्रसादयन्नास्ते । ।12

उत्प्रेक्षा अलंकार में उपमेय का उपमान के साथ साम्य की सम्भावना प्रदर्शित की जाती है ।

गुण

जिस प्रकार काव्य में अलंकार आदि का महत्व होता है उसी प्रकार गुणों का भी महत्त्व होता है । काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में गुणों का वर्णन मिलता है जिसमें दस गुणों की चर्चा की गई है –

श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य व्यक्तिरुदारता च कांतिश्च काव्यार्थ गुणा दशैते । ।13

अर्थात् शलेष, प्रसाद, समाधि,माधुर्य, ओज,पदसौकुमार्य,अर्थव्यक्ति,उदारता तथा कान्ति एवं काव्यार्थ ये दस गुण हैं । भारतीय काव्यशास्त्र में गुणों को परिभाषित करने का श्रेय सर्वप्रथम आचार्य वामन को जाता है । आचार्य वामन के अनुसार – काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः । अर्थात् काव्य के शोभाधायक धर्म गुण ही होते हैं । आचार्य वामन गुणों की संख्या बीस मानते हैं जिसमें दस शब्दगुण और दस अर्थगुण परिगणित हैं । शतकसंहिता में भी गुणों को उचित स्थान दिया गया है । प्रसाद एवं माधुर्य गुण ओज गुण की तुलना में अधिक व्याप्त हैं । काव्य में गुणों का यह सन्निवेश कवि की रचना कोमलता को प्रदर्शित करता है ।

निष्कर्ष

कवित्व प्रतिभा के धनी, साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी जी के द्वारा बीसवीं सदी में प्रणीत शतकसंहिता तैंतीस शतकों का एक मुक्तक काव्य है । कवि इसमें अपने अंतरंग में स्थित अनेक मनोभावों को केंद्र में रखते हुए उसे कोमल पद्यों में संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त किये हैं । सम्पूर्ण शतक आर्या छन्द में निबद्ध है । मात्रिक छंदों में आर्या छन्द का स्थान सर्वोपरि है । शतकसंहिता में पृथक रूप से काव्यशास्त्रीय तत्त्वों में अलंकारों का वर्णन मिलता है किन्तु समेकित रूप से काव्य की समीक्षा के उपरान्त अन्य काव्यशास्त्रीय तत्त्व रस,छन्द एवं गुण भी देखे जा सकते हैं ।

सन्दर्भ सूची

1. नाट्य शास्त्र-२४/४२
2. पाणिनीय शिक्षा
3. वृ० र० शा० सं० सं० पृ० ३८
4. शतकसंहिता, पुराणशतक, ४२
5. ध्वन्यालोक
6. काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास सूत्र ८७
7. साहित्यदर्पण
8. काव्यप्रकाश, नवम उल्लास, सूत्र १०३,१०४,१०५
9. शतकसंहिता,अलंकारशतक,५२
10. शतकसंहिता, रणरणकशतक,४०
11. शतकसंहिता,अलंकारशतक,४४
12. शतकसंहिता अलंकारशतक,४५
13. नाट्यशास्त्र २७/९६